क) औचित्य सिद्धान्त : उद्भव एवं विकास

भारतीय साहित्य शास्त्र के इतिहास में औचित्य सिद्धान्त का प्रमुख स्थान है। जिस प्रकार रस ध्वनि अलंकारादि काव्य तत्त्व काव्य के प्राण हैं, उसी प्रकार औचित्य भी काव्य के लिए अत्यावश्यक है क्योंकि औचित्य ही काव्य का साध्य है तथा काव्य के समस्त तत्व औचित्य पर ही आश्रित है।

औचित्य का निर्धारण लोक होता है। लोक का वास्तविक अर्थ "व्यवहार" है। व्यवहार किसी भी बात की सही स्थिति को बताने वाला है। व्यवहार संसार की मर्यादा और स्थिति में कारण रूप होता है। वैदिक मनीषियों ने अपने मन में जो शिवात्मक संकल्प किया था "तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु" उसके अन्दर भी उनके मन के साथ बाह्यार्थ का कल्याणकारी सन्दर्भ था उनका सृष्टि के मूल में विकासवाद का सिद्धान्त स्वाभाविक विकास के रूप में व्यवहारिक औचित्य ही है।

दिवादिगण की समवायार्थ "उच्" धातु (उचसमवाये) "कत्" प्रत्यय होने पर उचित शब्द बनता है।[1] तदन्तर उचित शब्द से भावार्थक ष्यञ् प्रत्यय से "औचित्य" शब्द की सिद्धि होती है।[2]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने रस को काव्य की आत्मा और औचित्य को काव्य का जीवित "प्राण तत्त्व" कहा है। "औचित्य रस–सिद्धस्य स्थिर का्व्यस्य जी्वितम्"[3]

---

1. उच समवाये मिश्रणे, इतिकविकल्पद्रुमः दिवादिपर सक0 सेट (हस्वादिः) औचत् औचित् अस्मात् पुरूषादित्वात् नित्यं इ0 इत्यन्ये वेशः स्नानात्। इति दुर्गादासः शब्द कल्पद्रुमः चौ0 सं0 पृ0 – 220
2. उचितस्य भावः ष्यञ युक्तत्वे "एताअपि यथौचित्यादुत्तमाधममध्यमाः। वाचस्पत्य–सप्तम् खण्ड, पृ0 1566
3. औचित्य विचार चर्चा, का०–5

संस्कृत साहित्य में "औचित्य" शब्द का आविर्भाव कब हुआ, इस बारे में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं दिया जा सकता किन्तु फिर भी प्राचीन विद्वानों के मतानुसार "औचित्य" शब्द अन्य काव्य तत्वों की तरह वैदिक वाड्मय में मिलता है। उनके अनुसार रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति रीति व औचित्य आदि के नाम ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं किन्तु उन सब काव्य तत्वों को भिन्न नामों से उल्लेखित किया गया है। यथा–रस को वाग्रस और अलंकार का अरंकृत। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि वैदिक काल में काव्य के अन्य तत्वों के साथ "औचित्य" तत्व भी विद्यमान था।

"औचित्य" तत्व को आचार्य क्षेमेन्द्र ने विशिष्ट रूप से प्रतिष्ठित किया है। औचित्य के बारे में क्षेमेन्द्र के पूर्ववर्ती आचार्यो के ग्रन्थों में भी उल्लेख मिलता है। अतः इस प्रकार ज्ञात होता है कि औचित्य का इतिहास बहुत लम्बा है।

औचित्य तत्व की काव्य शास्त्र में मान्यता

औचित्य को जानने के लिये हम काल को दो भागों में विभाजित कर सकते है

1. पूर्व ध्वनि काल
2. उत्तर ध्वनि काल

पूर्व ध्वनि काल में आचार्य भरत, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन व रूद्रट के नाम लिए जा सकते हैं और उत्तर ध्वनि काल में आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त, मम्मट भोजराज आदि के नाम आते हैं। जो आचार्य ध्वनि के अनुयायी नहीं है, उनमे आचार्य कुन्तक, महिम भट्ट व क्षेमेन्द्र हैं। इन सभी आचार्यो ने काव्य के लक्षण व तत्त्व की समीक्षा की है।

आचार्य भरत के नाट्य साहित्य के अनुसार ही औचित्य तत्व को व्यक्त किया है। भरत के अनुसार लोक वृत्त का अनुकरण ही नाट्य है। नाट्य लोक के स्वभाव से

उत्पन्न होता है इसलिये नाट्य के प्रयोग में लोक को ही प्रमाण मानना चाहिये।[4]

औचित्य पूर्ण अभिनय का मुख्य लक्ष्य दर्शकों के हृदय में रस का संचार करना है। अभिनय, प्रकृति, पाठ्य, छन्द, अलंकार, स्वर, संगीत, नाट्य की विशाल सामग्री का अवसान दर्शकों के हृदय में तद्रप रस भाव के उन्मीलन से ही होता है। भरत ने गुण–दोषों की व्याख्या भी रस को आलम्बन मानकर की है। भरत ने उचित या औचित्य शब्द के स्थान पर अनुरूप शब्द का प्रयोग किया है।[5] वेष के विषय में भरत ने कहा है – देश के अनुसार वेष हो, यदि मेखला गले में पहली जाये तो हंसी ही होगी। इस बात का अनुकरण आगे चलकर क्षेमेन्द्र ने किया।[6]

भामह का औचित्य के बारे में कथन है कि काव्यों के निर्माण में कवि को लोक स्वभाव का ध्यान अवश्य रखना चाहिये।[7] क्योंकि लोक प्रकृति ही औचित्य एवं अनौचित्य की निर्णायक स्थली है। काव्य में रीति औचित्य के लिए कहा है कि रीति चाहे वैदर्भी हो या गौड़ी, उसे सहृदय पाठकों की रूचि को आकृष्ट करना चाहिये, ऐसी स्थिति कभी न आने दे जिससे उनके मन में अरूचि उत्पन्न हो।[8]

उनके अनुसार उचित स्थान पर विन्यस्त दोष भी गुण हो जाते हैं। उचित स्थान पर प्रयुक्त दुष्ट युक्ति भी उसी प्रकार शोभा कारक होती है, जिस प्रकार माला के मध्य में गुत्थी हुई नील कमल की पखुड़ियां।[9] असाधु वस्तु भी आश्रय के सौन्दर्य के

---

4. लोकसिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्यं लोक स्वभावजम्।
   तस्मान्नाट्य प्रयोगे तु प्रमाणं लोक इष्यते।। ना० शा० 37 श्लोक 113
5. वयोऽनुरूप प्रथमस्तु वेषः
   वेषोऽनुरूपश्च गति प्रचारः।
   गति प्रचारानुगतं च पाठ्यं,
   पाठ्यऽनुरूपाऽभिनयश्च कार्यः।। ना० शा० 0/2.25।
6. ना० शा० 23/69
7. मुक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।। 1/21 काव्यालंकार
8. का० अ० 1/35
9. वही, 1/45

कारण सुन्दर लगती है।[10] इस प्रकार भामह के साहित्य में भी हमें औचित्य विचार यत्र तत्र दृष्टिगत होता है।

आचार्य दण्डी ने भी औचित्य के महत्व को स्वीकार किया है। दण्डी के अनुसार जो लोक रंजन में समर्थ हो वही उत्तम काव्य है तथा अलंकारों को ऐसा होना चाहिये जिससे सहृदयों के मन में अरूचि उत्पन्न न हो।[11] वस्तुतः उनका जो कान्त गुण है वह लौकिक मर्यादा का अतिक्रमण न करने वाला सर्वमनोहारी औचित्य ही है।[12]

उनके मत में देश, काल कला, लोक, न्याय, आगम से यदि विरोध हो तो उसे काव्य दोष कहा जायेगा। एक स्थान पर उन्होंने "अत्रत्यंगुणपदं औचित्य परम्" लिखा है।[13] अतः ज्ञात होता है कि दण्डी भी औचित्य के महत्त्व से परिचित थे।

वामन ने गुण–रीति के विवेचन के अतिरिक्त औचित्य के महत्त्व की ओर भी निर्देश किया हैं यह तथ्य के दोष प्रकरण तथा कवि शिक्षा के प्रकरण में देखा जा सकता हैं।[14]

आचार्य रूद्रट औचित्य तत्व का नामोल्लेखपूर्वक निर्देश करने वाले प्रथम आचार्य है। रूद्रट के अनुसार काव्य में वे ही अलंकार ग्राह्य है जो प्रकृत रस का पोषण करते हो। अनुप्रास अलंकार की पांच जातियों का विवरण देने के पश्चात् काव्य में उनके प्रयोग का वर्णन रूद्रट ने किया है। इस प्रसंग में उन्होंने औचित्य को ही प्रधान रूप से निष्कर्ष माना है। रूद्रट के अनुसार अनुप्रास तथा यमक के प्रयोग में औचित्य की निर्णायक भूमिका रहती है।[15]

---

10. वही, 1/55
11. काव्यादर्श – 1/62
12. का० द० 1/85
13. का० आ०
14. काव्यालंकार सूत्र – 2/2/1/1
15. काव्यालंकार – 3/50

आचार्य रूद्रट के बाद औचित्य सिद्धान्त के विकास में प्रमुख भूमिका आनन्दवर्धन की रही है। इन्होंने अपने युगान्तरकारी ग्रन्थ "ध्वन्यालोक" में औचित्य तत्व का सर्वांगीण विवेचन किया है। इनके पूर्व आलंकारिकों ने तो औचित्य तत्व की अपने ग्रन्थों में प्रकीर्ण अंगों के विषय में अवधारणा प्रस्तुत की थी। किन्तु आनन्दवर्धन ने इस काव्य के व्यापक तत्व के रूप में प्रतिष्ठित किया।

आचार्य क्षेमेन्द्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ "औचित्य विचार चर्चा" का मूल स्रोत, आचार्य आनन्दवर्धन कृत "ध्वन्यालोक" ही है। क्षेमेन्द्र ने इसी से वैचारिक स्पन्दन प्राप्त कर अपने ग्रन्थ का प्रणयन किया है। वस्तुतः काव्य तत्त्व के रूप में औचित्य की सर्वप्रथम स्पष्ट अवतारणा करने का श्रेय आनन्दवर्धन को ही जाना चाहिये।

आचार्य आनन्दवर्धन ने "ध्वन्यालोक" के तृतीय उद्योत में प्रकृति के औचित्य एवं अनौचित्य के बारे में स्पष्ट रूप से बताया है कि रस भंग का एक मात्र कारण अनौचित्य ही है क्योंकि रस की उत्कृष्टता एवं समुज्वलता का रहस्य है औचित्य का उपनिबन्धन।[16] औचित्य को काव्य तत्त्व के रूप में स्वीकार करने का यही प्रबल मन्त्र है।

औचित्य तत्वों के अविच्छेन्न प्रवाह गतिशीलता प्रदान करने में अभिनव गुप्त का भी योगदान कम नहीं है। अभिनव गुप्त क्षेमेन्द्र के साहित्यिक गुरू भी थे। अतः क्षेमेन्द्र ने इनसे भी प्रेरणा प्राप्त की होगी क्योंकि अभिनव गुप्त ध्वन्यालोक के भाष्यकार भी थे। इन्होंने कहा है कि यदि शरीर में आत्मा है तो शरीर सजीव है तभी अलंकार उसकी शोभा के सम्पादक हो सकते हैं किन्तु शरीर निर्जीव है तब तो अलंकार निरर्थक है। इस प्रकार जो स्थान शरीर में आत्मा का है, वही स्थान काव्य में औचित्य का होना चाहिये।[17]

---

16. अनौचित्यादृतेनान्यद् भड्.स्य कारणम्।
    औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।। ध्वन्या०–3/302
17. ध्वन्या० लोचन।

कुन्तक के अनुसार किसी वस्तु के महम्व का परिपोष किया जाना "उचिता ख्यान–जीवित" औचित्य है।[18] तथा जहां वक्ता या श्रोता के शोभातिशय से युक्त स्वभाव द्वारा वाच्य भली भांति आच्छादित हो जाता हैं वह भी औचित्य कहलाता है।[19] आचार्य कुन्तक जिस वक्रता को काव्य का जीवन मानते है वह औचित्य ही है। उनके अनुसार मार्ग रीति के तीन भेद है।

1. सुकुमार
2. विचित्र
3. मध्यम

तीनों मार्गो से दो सामान्य गुण रहते है। औचित्य और सौभाग्य। आचार्य कुन्तक औचित्य को सर्वाधिक व्यापक काव्य तत्त्व स्वीकार करते है। "व्यक्ति विवेक" में काव्य के पांच प्रकार के दोषों का उल्लेख किया है। ये दोष अनौचित्य के ही प्रकार है जिनसे रस प्रतीति में बाधा पड़ती है। इनकी सम्मति में औचित्य की काव्य का सर्वातिशायी प्रसाधन है। अनौचित्य लक्षण देकर इन्होंने औचित्य को स्पष्ट किया हैं। एतस्य विवक्षितरसादि प्रतीति विघ्नविधायित्वं नाम सामान्यलक्षणम्।[20]

भोजराज ने यद्यपि औचित्य को स्वतन्त्र काव्य तत्व के रूप में स्वीकार नहीं किया तथापि अपददोष, विरूद्ध दोष तथा 'भाविक' शब्द गुण आदि के आधार पर अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकारा है।

इन सबके बाद आचार्य क्षेमेन्द्र का काल आता है। यद्यपि औचित्य के महत्त्व को स्वीकार करने वालों का इतिहास बहुत ही लम्बा है तथापि औचित्य का सर्वागीण विवेचन प्रस्तुत करते हुये, इसे काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित कर औचित्य

---

18. आञ्जस्येन स्वभावस्य महत्वं येन पोषयते। व० जी० 1/53
19. यत्र वक्तु प्रभातुर्वा वाच्यशोभातिशायिना।
आच्छाद्यते स्वभावेन तदप्यौचित्यमुच्यते।। व० जी 1/54
20. व्यक्ति विवेक–1

सम्प्रदाय के प्रवर्तन का श्रेय पूर्णतः क्षेमेन्द्र को ही दिया जाता है तथा यह उचित भी है। "औचित्य विचार चर्चा" ही औचित्य सम्प्रदाय का मूल ग्रन्थ रत्न है। इन सब कारणों से ही आचार्य क्षेमेन्द्र को औचित्य सम्प्रदाय का प्रवर्तक आचार्य मानते हैं।[21]

क्षेमेन्द्र ने औचित्य को रस के समान आत्मा स्वीकार नहीं किया, परन्तु इसे सर्वत्र काव्य की आत्मा का "जीवित" कहा है। इन्होंने काव्य पुरूष के अनेक अंगों में प्राण का स्थान औचित्य को दिया है। यथा किसी शरीर में प्राण न रहने पर सम्पूर्ण धर्म, कर्म उपेक्षणीय हो जाते हैं तथैव काव्य में भी औचित्य के बिना सभी अलंकारादि व्यर्थ हो जाते हैं। क्षेमेन्द्र कहते हैं कि औचित्य के बिना अलंकार बाह्य शोभा के हेतु मात्र भी नहीं कहे जायेगें।[22]

औचित्य के बिना न अलंकार ही रूचिरता पासकता है न गुण ही। अलंकारों और गुणों का विन्यास यदि औचित्य पूर्ण न हो तो निश्चय ही वह हास्यापद होगा।[23]

औचित्य के स्वरूप को क्षेमेन्द्र ने अपने पूर्वाचार्यो के कथन के अनुरूप ही लिया है। जो जिसके अनुरूप हो वही उसके लिये उचित है तथा उचित के भाव को ही औचित्य कहते हैं।

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।[24]

---

21. काव्यस्यालमलकारैः किं मिथ्यागणितैर्गुणैः।
यस्य् जीवितमौचित्यं विचिन्तयापि न दृश्यते।। औ० वि० च०–4
22. उचितस्थान विन्यासादलङ्कृतिरलङ्कृतिः।
औचित्यादच्युता नित्यं भवत्येव गुणा–गुणाः।। औ० वि० च०–6
23. कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा,
पाणौनूपुरबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा।
शौर्येणप्रणते रिपौ करूणया नायान्तिकेहास्यता–
मौचित्येन बिना रूचिं प्रतनुते नालङ्कृतिर्नोगुणाः।। औ० वि० च०–6
24. औ० वि० च०–7

आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य तत्व की गुण, अलंकार एवं रस में सत्ता सिद्ध कर, औचित्य की अन्य अंगों में भी सत्ता सिद्ध की है। तथा 27 प्रकार के औचित्य का विवेचन किया है।

पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन कारक, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल, व्रत्त, तत्त्व, सत्त्व, अभिप्रायः, स्वभाव, सार संग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम, आशीर्वाद।

औचित्य के प्रतिपादन में आचार्य क्षेमेन्द्र ने व्यापक तथा वैज्ञानिक शैली को अपनाया है। इन्होंने औचित्य के अंग रस तथा कारक का अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से विचार किया है। इसका कारण आचार्य क्षेमेन्द्र पर आनन्दवर्धन एवं अभिनव गुप्त का प्रभाव प्रतीत होता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र की उदाहरण देने की क्षमता विशेष रूप से प्रशंसनीय है। उन्होंने अपनी प्रत्येक बात की सिद्धि के लिये उदाहरण व प्रत्युदाहरण दोनों दिए हैं। इन्होंने अपने मतों की व्याख्या अत्यन्त निःसंकोच तथा उदार होकर की है। इन्होंने उदाहरण में जितने पद्य उद्धृत किये हैं, उनके ग्रन्थों के तथा लेखकों के नाम दिये हैं।

ये कालिदास, व्यास, राजशेखर जैसे कवियों के दोष दिखाने में भी निर्भय है।

इस प्रकार प्राचीनकाल से चले आ रहे औचित्य शब्द को आचार्य क्षेमेन्द्र ने सम्प्रदाय के रूप में स्थापित किया। इस औचित्य सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक क्षेमेन्द्र का संस्कृत समाज चिरकाल तक ऋणी रहेगा।

ख) आचार्य क्षेमेन्द्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

आचार्य क्षेमेन्द्र भारतीय संस्कृत साहित्य में प्रमुख स्थान रखते हैं। संस्कृत के विपुल साहित्य में एक भी क्षेत्र ऐसा नहीं, जिसमें इन के साहित्य की धारा न बहती हो। पद्य काव्य रचना में, कवि रहस्य प्रतिपादन में, नाटक लेखन में, चरित काव्य निर्माण

में, गद्यकाव्य रचने में, छन्द शास्त्र प्रवचन में, नाना प्रकार के ग्रन्थों के प्रस्तुत करने में क्षेमेन्द्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आचार्य क्षेमेन्द्र अपने समय के महान् कवि थे। अपने साहित्यिक जीवन के प्रभात में क्षेमेन्द्र एक अनुवादक मात्र थे।[25] कवित्व शक्ति तो उन्हें शत–शत अभ्यास से ही प्राप्त हुई थी। इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने अपने प्रारम्भिक जीवन को सार्थक रूप से व्यतीत करते हुये भावी कवि–जीवन की सुस्पष्ट आधारशिला के रूप में उसे निर्मित किया । लोकाचार का उन्हें अच्छा ज्ञान था। इसके साथ–साथ वे एकान्त में कथा तथा कहानियों को सुनने के अभ्यासी थे।

अपने काव्यों को रचने से पहले उन्होंने देश–देशान्तर में भ्रमण कर वहां की प्रथाओं, विशेषताओं एवं मानव–भावनाओं का अध्ययन किया। भारत का विशाल मानचित्र उनकी दृष्टि में सदैव रहता था।

आचार्य क्षेमेन्द्र एक काश्मीरी पण्डित थे इस बारे में क्षेमेन्द्र ने अनेक ग्रन्थों के उपसंहारपरक श्लोकों में निर्देश किया है। ये सिन्धु के पौत्र तथा प्रकाशेन्दु के पुत्र थे।[26] वे दान धर्म में नित्य तत्पर रहते थे।

क्षेमेन्द्र वैष्णव थे। शैव पिता के पुत्र होने पर भी क्षेमेन्द्र ने अनेक ग्रन्थों के मंगलाचरण में विष्णु की स्तुति की है।[27] क्षेमेन्द्र को सर्वमनीषि शिष्य कहा गया है, इससे स्पष्ट है कि उनका अध्ययन अनेक गुरूओं के यहां हुआ। क्षेमेन्द्र ने अपने मयंक, अभिनव गुप्त और सोम पाद तीन गुरूओं का स्पष्ट उल्लेख किया है।

कवि कण्ठाभरण तथा औचित्य विचार चर्चा के अन्त में ग्रन्थ समाप्ति का समय श्रीमदनन्तराज नृपति का समय (राज्यकाल) बताया है। कल्हण की राजतरगिंनी में यह

25. औ० वि० च० पृ०–13 (प्रस्तावना)
26. आसीत प्रकाशेन्द्र इति प्रकाशः काश्मीर देश, त्रिदेशेश्वर श्रीः औ० वि० च० उ० स०।
27. औ० वि० च०, दशावतार चरित तथा रामायण मंजरी के मंगलाचरण।

समय 1028 से 1063 ई0 तक है।

क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमदेव "अवदान कल्प लता" का प्रणयन 1052 ई0 बताया है। इस प्रकार इन सबके प्रमाण से आचार्य क्षेमेन्द्र का समय ग्याहरवीं शताब्दी का मध्य काल निश्चित होता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र के बारे में यह जनश्रुति है कि ये अपने जीवन के उत्तरकाल में सन्यासी होकर रहे तथा इन्होंने अपने हाथों से शिव प्रतिमा का गाठालिंगन करते हुए अपने प्राण त्यागे थे।

क्षेमेन्द्र संस्कृत साहित्य के एक बहुश्रुत, बहुज्ञ तथा दूरदर्शी कवि थे। इन्होंने अपनी रचना रूपी आभूषणों द्वारा संस्कृत साहित्य के कलेवर को सुसज्जित किया। क्षेमेन्द्र की 37 रचनाओं का पता लग चुका है, इनमें से 18 रचनाये प्रकाशित हो चुकी है। कृतियों का विभाजन इस प्रकार से किया गया है।

पद्यात्मक सूक्ष्म रूपान्तर

1. रामायण मंजरी
2. भारत मंजरी
3. बृहत् कथा मंजरी
4. दशावतारचरित
5. बोद्धाबदानकल्पलतिका

उपदेशात्मक

6. चारूवर्याशतक
7. सेन्यसेवकोपदेश
8. दर्पदलन
9. चतुर्वर्गसंग्रह
10. कलाविलास
11. दशोपदेश
12. नर्ममाला

नीति ग्रन्थ

13. लोकप्रकाशकोष
14. नीतिकल्पतरू
15. व्यासाष्टक

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ

16. कविकण्ठाभरण　　17. सुवृततिलक
18. औचित्य विचार चर्चा

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा रचित कुछ प्रमुख ग्रन्थ

1. बृहत्कथामंजरी

"बृहत्कथामंजरी" गुणाढय की बृहत्कथा का सार है। इसमें 18 लम्बक तथा 7400 पद्य हैं। कवित्व की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह ग्रन्थ कवि के पाण्डित्य को दर्शाता है। किन्तु इसकी भाषा में दुर्बोधता और वर्णनों में बहुत ही संक्षिप्तता कर दी गई है। इन न्यूनताओं के रहते हुये भी जहां–जहां नारी सौन्दर्य और राजकुमारों के शौर्य बल प्रदर्शन के प्रसंग आये है, वहां–वहां क्षेमेन्द्र ने अत्यन्त मर्मग्राही एवं सरस वर्णन प्रस्तुत किया है।

2. कविकण्ठाभरण

कवि कण्ठाभरण में आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवित्व प्राप्ति, शिक्षा, चमत्कृति, गुण–दोष बोध तथा परिचय प्राप्ति का वर्णन किया है। इसमें पांचों सन्धियां है। एक – एक सन्धि में एक–एक विषय का विश्लेषण किया गया है। इस के ग्रन्थ से ही आचार्य क्षेमेन्द्र के व्यक्तित्व एवं उनकी कृतियों के विषय में एक साथ पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। क्षेमेन्द्र की यह कृति एक अनुपम कृति है।

3. सुवृत्ततिलक

इस ग्रन्थ में आचार्य क्षेमेन्द्र के छन्दों का विश्लेषण किया है। इसको तीन विन्यासों में बांटा गया है। इस एक पुस्तक के अध्ययन न करने से कोई भी व्यक्ति छन्द–शास्त्र का मर्मज्ञ हो सकता है।

4. समय-मातृका

यह ग्रन्थ आचार्य क्षेमेन्द्र ने आठ समयों में विभक्त किया है तथा छः सौ पैंतीस श्लोकों का यह एक प्रबन्ध काव्य है।

इस ग्रन्थ को रचने का क्षेमेन्द्र का एकमात्र उद्देश्य वेश्याओं, कुटिटनियों तथा विटो से श्रीमानों–धनिकों की सम्पति की रक्षा करना था।

"श्रीमतां भूति रक्षायै रचितोऽयं स्मितोत्सवः।"

क्षेमेन्द्र का उद्देश्य समाज में फैली कुप्रवृतियों अनाचारों, व्याभिचारों तथा वंचकता का उन्मूलन कर स्वस्थ वातावरण का निर्माण करना था। उन्होनें ग्राम में पटवारी से लेकर जज तक के कार्यो की एक समान आलोचना की है।

उत्कोचारब्ध संघट्टैः कूटरथादिभिः।

सादिष्टाभीष्ट संपतिर्जग्राहजयपट्टकम्।।[28]

5. औचित्य विचार चर्चा

जिस औचित्य की मान्यता को लेकर महाकवि क्षेमेन्द्र आलंकारिको की पंक्ति में सम्मानित स्थान प्राप्त कर सके उसके विषय में उनका कहना है कि "औचित्य ही रस का जीवन भूत है, प्राण है। वह काव्य स्वाद में चर्मकाराधायक है।[29]

औचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार से परिभाषित किया है कि जो जिसके सदृश ही जिससे मेल मिले उसे उचित कहते है और उचित का भाव ही औचित्य है।[30]

आचार्य क्षमेन्द्र ने "औचित्य विचार चर्चा" लिख कर काव्य तत्व का व्यापक रूप स्पष्ट किया है। उन्होंने औचित्य को रस सिद्ध काव्य का जीवित कहा है :

---

28. समयमातृका 2/42
29. औ० वि० चर्चा 3/3
30. वही, 7/12

औचित्यं रस सिद्धस्य स्थिरं का व्यस्य जीवितम्।[31]

औचित्य की सबसे बड़ी महता क्षेमेन्द्र ने ही प्रतिपादित की है तथापि औचित्य के सर्वथा नवीन उद्भावक के रूप में क्षेमेन्द्र को नहीं माना जा सकता। इसका पता हमे औचित्य के इतिहास से स्पष्ट लग जाता है। इतना होने पर भी वे यानि आचार्य क्षेमेन्द्र अपने आपको औचित्य के नवीन उद्भावक के रूप में ही इंगित करते हैं।

क्षेमेन्द्र इत्यक्षय काव्य कीर्तिश्चक्रे नवौचित्य विचार चर्चाम्।[32]

इस प्रकार हम देखते है कि संस्कृत साहित्य में क्षेमेन्द्र का अपना स्थान रहा है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में प्रत्येक विषय को स्पर्श किया है तथा औचित्य काव्य तत्व को सर्वोच्च स्थान देने में अहं भूमिका निभायी है।

महाकवि कालिदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व

व्यक्तित्व

संस्कृत साहित्य के अधिकांश कवि अपना स्पष्ट परिचय देने में प्रायः पराङ्.मुख रह है। महाकवि कालिदास भी इसके अपवाद नहीं है उनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। किन्तु कालिदास जैसे महान् व्यक्तित्व वाले कवि के सम्बन्ध में कुछ जनश्रुतियों का प्रचालित हो जाना स्वाभाविक ही है इनमें कितना सत्य है यह विचारणीय है। जनश्रुतियों के अतिरिक्त दन्तकथाओं के अलावा कालिदास के जीवनचरित, जन्म–स्थान काल आदि के बारे में हमे कुछ भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु कालिदास की रचनाओं के अध्ययन से आलोचकगण कवि के बारे में कुछ अनुमान लगाते हैं।

कालिदास जाति के ब्राह्मण थे। वे शिव के भक्त थे उन्होंने अपने ग्रन्थों के

---

31. औ० वि० च० 5, पृ० 6
32. वही, 3/284, ग्रन्थ कर्तृ परिचय

मंगलाचरण में सर्वत्र शिव की ही वन्दना की है। किन्तु शिव के उपासक होते हुए भी उनमें धार्मिक संकीर्णता बिल्कुल न थी। उन्होंने पुराणों की त्रिमूर्ति के शेष दो देवता – ब्रह्मा और विष्णु के प्रति भी पर्याप्त सम्मान प्रदर्शित किया है। उनके ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि वे केवल काव्य रचना में ही कुशल न थे, बल्कि उन्हें वेद, वेदांग, उपनिषद्, आस्तिक दर्शन, स्मृतियों, पुराणों आदि का तो पूर्ण ज्ञान था। साथ ही व आयुर्वेद, काम–शास्त्र, नृत्य, गीत, वाद्य तथा चित्रकला आदि से भी खूब परिचित थे। सभवत् वे समृद्ध परिवार से थे। दरिद्रता का उन्हें जीवन में कभी अनुभव नहीं हुआ। अतः किंवदन्ती के अनुसार उनका राजाश्रित होना उचित जान पड़ता है। उनकी रचनाओं मे देश के विभिन्न भौतिक भागों के जो सही वर्णन मिलते हैं, उनसे लगता है कि कालिदास पर्यटन प्रिय थे। कुमारसंभव में हिमालय वर्णन के सन्दर्भ में देवदारु वृक्ष तथा हिम–धवल चोटियों का वर्णन, रघुवंश में रघुदिग्विजय के दौरान वर्णित देश की चारों दिशाओं का स्वाभाविक भौगोलिक चित्रण तथा राम के लंका से अयोध्या लौटते समय लंका से अयोध्या तक के प्रदेशों का वर्णन और मेघदूत में यात्रा के निमित मेघ को बताये हुए मार्ग में आने वाले पर्वत, नदी वन नगर आदि का सही और स्वाभाविक वर्णन इस बात का प्रमाण है कि इन सब प्रदेशों को कालिदास ने अपनी आँखों से देखा था। इस तरह का वर्णन कल्पना के आधार पर घर बैठे नहीं किया जा सकता।

कवि को प्रकृति – प्रेम ने ही उन्हें विभिन्न प्रदेशों एवं पर्वतों में पर्यटन के लिए प्रेरित किया था। यह प्रकृति–प्रेम उनके काव्यों और नाटकों में किए गए सूर्योदय, सूर्यास्त, संध्या, नगर, वन, नदी आदि के वर्णन से साफ झलकता है। वे अत्यन्त कोमल स्वभाव के थे। इसलिए प्रकृति को कोमल रूप ही उन्हें आकृष्ट कर सका, बीभत्स रूप नहीं। रसों में उन्हें श्रृंगार रस अधिक प्रेरक हुआ। उनकी सभी रचनाओं का प्रधान रस संभोग या विप्रलम्भ रूप श्रृंगार रस ही है। इसी कारण वे स्त्री के प्रति सदा

अनुकम्पाशील प्रतीत होते हैं। उन्हें बच्चों से प्रेम है। वे सन्तान हीनता को गृहस्थ का सबसे बड़ा अभिशाप समझते है। स्निग्ध हृदय होते हुए भी उनकी दृष्टि पवित्र और उदात्त प्रेम की ओर थी। वे भारतीय सभ्यता के दृढ़ पक्षपाती प्रतीत होते हैं। उन्होंने अश्वघोष के समान अपने धार्मिक विचारों को तर्कपूर्ण और स्पष्ट भाषा में प्रकट नहीं किया तथापि अपने नायको के वर्णन से उन्होंने स्थान–स्थान पर भारतीय सभ्यता के श्रेष्ठ आदर्शों को चित्रित किया है।

प्रतीत होता है कि वे जीवन में सुखी रहे होगे। क्योंकि उनकी रचनाओं में कही भी निराशावाद या नश्वरता की झलक नहीं मिलती हैं

स्थिति – व्यक्तिगत जीवन के समान कवि के जन्म–स्थान के सम्बन्ध में भी कोई बाह्य साक्ष्य नही मिलता जिसके आधार पर उसका निर्णय किया जा सके। अतः अन्तः साक्ष्य के आधार पर कवि के जन्म–स्थान के विषय में अनेक अनुमान किए गए हैं। परन्तु अभी तक इस विषय में कोई निर्णय नहीं हो पाया है। इस विषय में पाँच–छः मत प्रस्तुत किए गए है।

कतिपय विद्वान् कालिदास की रचनाओं में हिमालय, उसमें होने वाले पदार्थ तथा केसर–पुष्प के वर्णन के आधार पर उन्हें कश्मीरी बताते हैं। अपने पक्ष में वे यह भी युक्ति देते हैं कि शाकुन्तल आदि में अभिज्ञान का पुनः–पुनः प्रयोग करके कालिदास ने कश्मीर देश के 'प्रत्यभिज्ञा' दर्शन परक शैव सम्प्रदाय की ओर संकेत किया है। बंगाल के विद्वान् कवि के नाम के आधार पर उन्हें काली देवी का भक्त मानकर बंगदेशीय मानते हैं। क्योंकि काली की उपासना का प्रचार मुख्यता बंगदेश में ही है। इसी तरह कुछ विद्वान् कालिदास को विदर्भ, लंका अथवा असम निवासी समझते हैं। लेकिन जिस विस्तार से उन्होंने मेघदूर में उज्जयिनी का सौन्दर्य, क्षिप्रा नदी, उसके आस–पास की छोटी–छोटी नदियों तथा महाकाल के मन्दिर का भावपूर्ण वर्णन किया

है तथा जिस आग्रह के साथ मेघ से अलकापुरी जाने के सीधे मार्ग से कुछ हटकर मालव देश की ओर जाने की प्रार्थना की है – उसे देखकर और प्राचीन किंवदन्ती के आधार पर कालिदास उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के समकालीन सिद्ध होते हैं। अधिकांश विद्वान कालिदास को उज्जयिनी–निवासी मानना अधिक उचित समझते हैं। लेकिन अभी तक अन्तिम निष्कर्ष नहीं निकल सका है।

कालिदास की स्थिति (काल) निर्धारण

कालिदास के जन्म–काल के बारे में संस्कृत साहित्य में अभी कोई सर्वसम्मत निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। डॉ0 रामचन्द्र तिवारी कृत कालिदास के तिथि संशुद्धि नामक ग्रंथ में अकाट्य युक्तियों द्वारा कालिदास को कुमार गुप्त के समय से सम्बद्ध होने का दावा किया गया है। यह तो पूर्णतया निश्चित है कि कालिदास का समय ईसा की सातवीं सदी के बाद नहीं हो सकता, क्योंकि 620 ईस्वी में विद्यमान बाण कवि ने 'हर्षचरित' में तथा 634 ईस्वी के एहोल के शिलालेख में कालिदास के नाम का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। यह भी सुनिश्चित है कि कालिदास का जन्म शुगवंश के राजा अग्निमित्र (150 ईसा पूर्व) से पूर्व नहीं हुआ, क्योंकि कवि के मालविकाग्निमित्र नाटक का प्रमुख नायक यही अग्निमित्र है तथा कालिदास द्वारा अग्निमित्र की राजधानी विदिशा का मेघदूत में भी उल्लेख किया गया है। ये नाटककार भास के पूर्ववर्ती थे क्योंकि कालिदास ने स्वयं मालविकाग्निमित्र में भास, कविपुत्र तथा सौमिल्ल का उल्लेख किया है। अतः इन दो सीमाओं के मध्य में ही कालिदास का जन्मकाल होना चाहिए, 150 ईसा पूर्व से अधिक प्राचीन तथा सातवीं शताब्दी से अधिक अर्वाचीन किसी भी दशा में नहीं माना जा सकता। उनकी चर्चा करना भी व्यर्थ है।

अब तक कालिदास के काल के बारे में तीन मत प्रचलित हैं।

1. छठी सदी का कहरूर मत
2. पाँचवी सदी वाला गुप्तकालीन मत
3. प्रथम शती ईसा पूर्व का प्राचीन मत

कालिदास के साथ जो भारतीय परम्परा के अनुसार विक्रमादित्य का नाम जुड़ा हुआ है, उससे किसी भी मत के समर्थक ने सर्वथा इन्कार नहीं किया। परन्तु यह विक्रमादित्य कौन सा है? इस विषय मे मतभेद है। भारतीय इतिहास में कम–से–कम ऐसे चार राजा हैं, जिनकी उपाधि विक्रमादित्य है – 1. उज्जैन का परमार वंशीय राजा विक्रमादित्य जिसने 57 ईसवीं पूर्व संवत् का प्रर्वतन किया। 2. चन्द्रगुप्त द्वितीय (357–413 ई0)। 3. कुमारगुप्त प्रथम (413–435 ई0)। 4. कश्मीर का विक्रमादित्य (500 ई0)।

भारतीय परम्परानुसार कालिदास उस विक्रमादित्य का सभा कवि था जो ईसा से पूर्व हुआ है किन्तु आधुनिक विद्वान तो उस विक्रमादित्य को काल्पनिक मानते हैं क्योंकि उस समय के उसके सिक्के अथवा मोहरें उपलब्ध नहीं है। वे कालिदास का सम्बन्ध विक्रमादित्य उपाधिकारी गुप्तवंशीय राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त प्रथम से स्थापित करते हैं। छठी शताब्दी मानने वाले विद्वान् विक्रमादित्य से उज्जयिनी के राजा हर्ष (षष्ठ शतक) का ग्रहण करते हैं। प्रत्येक पक्ष की प्रमुख युक्तिया निम्नलिखित हैं।

1. छठी शती का मत -

इस मत के प्रतिपादक फर्गुसन हैं। उनका विचार है कि कहरूर–युद्ध (543 ईस्वी) भारतीय इतिहास में एक नया युगान्तर उपस्थित करता है, जिसमें उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य ने म्लेच्छों को पराजित करके विजय प्राप्त की और उसकी स्मृति के उपलक्ष में विक्रम संवत् चलाया। उसे प्राचीन सिद्ध करने के लिए 600 वर्ष पूर्व अर्थात्

57 ईसा पूर्व प्रचलित किया। अपने मत की पुष्टि में वह यह तर्क देते हैं कि कालिदास के ग्रन्थों में यवन, शक, हूण आदि के नाम आते हैं और हूणों ने भारत पर 500 ईस्वी में आक्रमण किया था। अतः कालिदास का काल हूणों के आक्रमण (550 ईस्वी) के बाद ही होना चाहिए और वह है उज्जयिनी के राजा हर्ष का काल अर्थात् छठी शताब्दी। मन्दसौर के शिलालेख के मिलने के बाद यह मत स्वतः खण्डित हो जाता है। अब उसे कोई विद्वान् स्वीकार नहीं करता। मन्दसौर के शिलालेख में, शिलालेखका काल 529 मालव सम्वत् (437 ईस्वी) लिखा है और उसमें वत्सभट्टि रचित कुछ ऐसे श्लोक भी हैं जो कालिदास के ऋतुसंहार तथा मेघदूत का बलात् स्मरण कराते हैं। इस साम्य के आधार पर यह कल्पना करना तो अंसगत होगा कि कालिदास ने वत्सभट्टि का अनुसरण किया होगा। यही कहना होगा कि वत्सभट्टि ने ही कालिदास के अनुकरण पर इन श्लोकों की रचना की है। अतः कालिदास का समय छठी शताब्दी न होकर कम–से–कम 473 ईस्वी सन् से पूर्व तो होना ही चाहिए।

इसी प्रकार 500 ईस्वी में हूणों को पराजित किए जाने वाला मत भी असंगत है। क्योंकि कालिदास ने रघु दिग्विजय में जिन हुणों का उल्लेख किया है, उन्हें रघु ने भारत की सीमा के बाहर पराजित किया था न कि भारत में रहने वालों को। अब तो यह सिद्ध हो गया है कि ईसा पूर्व प्रथम–द्वितीय शताब्दी में हूणों ने बैक्टीरिया में साम्राज्य स्थापित कर लिया था। अतः यह मत सर्वथा अमान्य हो गया है।

2. गुप्तकालीन मत

प्रायः पुरातत्त्व वेन्ताओं का मत है कि गुप्तवंशीय राजाओं का शासनकाल भारत के इतिहास का स्वर्ण युग है। सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों को भारत से बाहर निकालकर विक्रमादित्य की उपाधि प्राप्त की थी और अपने से पूर्व प्रचलित मालव सम्वत् को ही विक्रम सम्वत् के नाम से चलाया था। कालिदास ने राज के विक्रमादित्य

उपाधि धारण करने में उपलक्ष में विक्रमोर्वशीय नाटक की रचना की और समुद्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म के उपलक्ष्य में कुमारसम्भव नामक महाकाव्य की रचना करके इन दोनों उत्सवों को अमर कर दिया।

2. 'रघुवंश' में वर्णित रघु की दिग्विजय यात्रा और प्रयाग की हरिषेण–कृत 'प्रशस्ति' में वर्णित समुद्रगुप्त (336–337 ई0) की दिग्विजय यात्रा में पर्याप्त समानता दिखाई पड़ती है। यथा मालविकाग्निमित्र में वर्णित अश्वमेध समुद्रगुप्त कृत 'अश्वमेध' को लक्ष्य करता है।

3. मेघदूत के पहले ही पद्य में रामगिरि का वर्णन हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावती के पति वाकाटक नरेश प्रवरसेन के अभिलेखों में भी रामगिरि का वर्णन है।

4. गुप्तकालीन जनता का सम्पन्न जीवन भी ऋतुसंहार तथा मेघदूत के उज्जयिनी वर्णन में भली–भाँति प्रतिबिम्बित हुआ है।

5. कवि द्वारा गुप् धातु तथा उससे बने गुप्त, गोप्ता आदि शब्दों का पुनः–पुनः प्रयोग साभिप्राय है और इसमें अपने आश्रयदाता गुप्तवंशीय राजाओं की ओर संकेत है।

6. 'कुन्तलेश्वर दौत्य– में कालिदास का कुन्तलनरेश की सभा में दूत बनकर जाने का उल्लेख हैं। यह घटना भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय की है।

इसके अतिरिक्त मैकडोनल का संस्कृत–पुनरुज्जीवनवाद भी कालिदास को गुप्तकालीन सिद्ध करता है। मैकडोनल के अनुसार वेदों के काल से लेकर प्रथम शताब्दी तक संस्कृत का उन्नति काल है। तदन्तर 3–4 सदियों का मध्यान्तर काल आ जाता है जिसमे विदेशियों के लगातार आक्रमण होते रहने के कारण साहित्य कला लुप्त रही। इसके बाद गुप्त राजाओं के समय पुनर्जागरण काल हुआ और कालिदास इसी नए युग के प्रतिनिधि कलाकार लगते हैं।

इस बार की पुष्टि में बौद्ध कवि अश्वघोष (78 ईसवी) तथा कालिदास के काव्यों में कही–कही पाए जाने वाले पर्याप्त साम्य को भी प्रस्तुत किया जाता है और कालिदास को अपने से पूर्ववर्ती अश्वघोष से प्रभावित सिद्ध किया जाता है। यह वाद कहाँ तक युक्तियुक्त हैं? यह कहना तर्क संगत नही लगता है, क्योंकि इसे मानने से अनेक ऐसे प्रश्न उठते हैं, जिनका उचित समाधान नहीं मिलता।

1. प्रथम प्रश्न यह है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी विजय के उपलक्ष में नया सम्वत् न चलाकर अपने से पूर्व प्रचलित मालव सम्वत् को अपने नाम से क्यों प्रचलित किया। उसके पितामह चन्द्रगुप्त प्रथम ने जो गुप्त सम्वत् चलाया था, उसे ही क्यों नहीं प्रचलित रहने दिया।
2. गुप्त वंश के किसी भी सम्राट् का नाम विक्रमादित्य न था। चन्द्रगुप्त द्वितीय की यह उपाधि मात्र थी। उपाधि लेने के लिए कोई उसी नाम का पूर्ववर्ती सम्राट् अपेक्षित है, जो परवर्ती राजाओं के लिए अनुकरणीय बने। अतः विक्रमादित्य उपाधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय से बहुत पूर्व विक्रमादित्य नाम का कोई सम्राट हुआ होगा और वही कालिदास का असली आश्रयदाता होगा–यही क्यों न मान लिया जाये।
3. 'कुमार' और 'गुप्त' आदि शब्द व्यंग्य अर्थ में प्रयुक्त न होकर अपने मुख्यार्थ में भी प्रयुक्त माने जा सकते हैं। अतः उनसे कालिदास को गुप्तकालीन सिद्ध करने का दृढ़ आधार नहीं बनता।
4. इसी तरह रघु के दिग्विजय के अनुकरण पर समुद्रगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ किया–ऐसा भी नही माना जा सकता है। क्योंकि पुराणों में अनेक राजाओं द्वारा अश्वमेघ यज्ञ किये जाने का वर्णन मिलता है।
5. यदि कालिदास को नवजागरण काल का कवि माने तो उस काल को मैकडोनल

द्वारा निर्दिष्ट काल से बहुत पहले प्रथम शताब्दी मानना अधिक संगत होगा। क्योंकि वही पुननिर्माण युग था। भारतवर्ष विद्याविषयक उन्नति के सम्बन्ध में गुप्त राजाओं को स्मरण न करके राजा भोज और विक्रमादित्य को ही स्मरण करता है। बाद के अनुसन्धानों से भी यह सिद्ध हो गया है कि गुप्त राजाओं से पूर्व शक राजाओं के काल में भी संस्कृत साहित्य का प्रचलन जारी रहा है। अतः मैकडोनल का पाँचवी शताब्दी वाला पुनरूज्जीवन बाद सर्वथा भ्रान्त सिद्ध होता है।

6. अश्वघोष और कालिदास के काव्यों में साम्य वाली बात पर विचारें तो प्रश्न यह उठता है कि इस साम्य पर कालिदास को पूर्वर्ती माना जाए या अश्वघोष को। कालिदास जैसे एक अद्भुत प्रतिभा–सम्पन्न विश्वमान्य कलाकार की अपेक्षा कार्य–क्षेत्र में अवतीण्र एक बौद्ध दार्शनिक का ही कालिदास से प्रेरणा लेना अधि क्क स्वाभाविक प्रतीत होता है। साथ ही यदि कालिदास ने अश्वघोष का अनुकरण किया होता, तो बाद के कवि भी उसका आदरपूर्वक उल्लेख करते। किन्तु न किसी ने उसका नामोल्लेख किया है और न उसकी शैली का अनुकरण।

इसके अलावा कालिदास की स्वाभावित भाषा की अपेक्षा अश्वघोष की शास्त्रीय भाषा ग्रन्थकारों के सामने बनावटी तथा कालिदास के काव्यों में कुछ अपाणिनीय प्रयोग कालिदास को ही अश्वघोष की अपेक्षा प्राचीन सिद्ध करते हैं। इन युक्तियों के आधार पर इस मत पर भी यह चिन्ह् की अपेक्षा रखता है।

प्रथम शती ई0 पूर्व का मत – प्राचीर भारतीय परम्परा इसी वाद में विश्वास रखती है। अधिकांश आधुनिक भारतीय विद्वान् उपाधिकारी विक्रमादित्य न था, प्रत्युत वह मालव देश के परमारवंशीय राजा महेन्द्रादित्य का पुत्र विक्रमादित्य था, जिनकी

राजधानी उज्जयिनी थी। प्रथम शताब्दी ई0 पूर्व में वर्तमान गुणाढ्य कृत कथा सरित्सागर में वर्णित विक्रमादित्य वे ही प्रतीत होते हैं। सर्वप्रथम आक्रमण में शकों को उन्होंने ही परास्त किया था और उस विजय के उपलक्ष्य में 57 ई0 पूर्व उन्होंने अपने नाम पर विक्रम सम्वत् चलाया था।

1. रघुवंश में निर्दिष्ट पाण्ड्य देश की राजधानी उरगपुर ऐतिहासिक दृष्टि से ईसा पूर्व प्रथम शती में ही अधिक सम्भव है।
2. इसके अलावा, गुप्तवंशीय सम्राटों की राजधानी पाटलिपुत्र थी, न कि उज्जयिनी, जबकि कालिदास का सम्बन्ध उज्जयिनी से है। अतः उज्जयिनी के महेन्द्रादित्य के पुत्र परमारवंशीय विक्रमादित्य ही आदि विक्रमादित्य थे – यह बात आधुनिकतम ऐतिहासिक अनुसंधानों द्वारा सिद्ध हो गई है तथा कालिदास उन्हीं के सभा कवि थे।
3. 'विक्रमोर्वशीय' नाटक में 'इन्द्र' के स्थान पर 'महेन्द्र' शब्द का प्रयोग करके कवि ने अपने आश्रयदाता के पिता महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य के नाम को भी अमर बनाना चाहा। यह नाटक संभवतः महेन्द्रादित्य के राजकार्य से अवकाश–ग्रहण और विक्रमादित्य के यौवाराज्याभिषेक के अवसर पर खेला गया होगा।
4. कालिदास का स्वयं शैव होते हुए सूर्यवंशी राजाओं को अपने अमर ग्रन्थ रघुवंश में कथानायक बनाने का कारण भी यही हो सकता है कि उसके आश्रयदाता महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य सूर्यवंशी राजा थे।
5. 'रघुवंश' में दिलीप और उसके पुत्र रघु के वर्णन तथा 'कथासरित्सागर में वर्णित महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य के वर्णन परस्पर बहुत मिलते–जुलते हैं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि कालिदास इन्हीं आदि विक्रमादित्य के समकालिक थे।
6. 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में चोरी के अपराध में धीवर को कठोर दण्ड तथा

उत्तराधिकार के नियम को जो रूप प्राप्त होता है उससे ज्ञात होता है कि इस ईसा से पूर्व की कृति है, जब मनु, वसिष्ठ और आपस्तम्ब ही धर्म के विषय में प्रमाण माने जाते थे। क्योंकि प्रथम शताब्दी के बृहस्पति आदि के अनुसार चोरी आदि का इतना कठोर दण्ड नहीं। अतः कालिदास को बृहस्पति से पूर्ववर्ती मानना ही उचित है।

7. इसके अतिरिक्त कालिदास के ग्रन्थों में उपलब्ध दाश्वन्, पेलव, ऋम्बक आदि शब्दों का प्रयोग तथा 'तं पातयां प्रथमामास पपात पश्चात्' इत्यादि स्थलों मे लिट् लकार के अपाणिनीय प्रयोग यह सिद्ध करते है कि कालिदास उस समय जीवित थे, जब पाणिनि और पतञ्जजि के नियम पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित नहीं हुए थे। इसलिए भी कालिदास का काल प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व ही सिद्ध होता है। पाश्चात्य विद्वानों में डॉ0 पीटरसन भी इस मत के समर्थक हैं।

8. प्रयाग के पास भीटा नामक स्थान से प्राप्त मिट्टी की एक पदक पर दो दृश्य अंकित है। एक दृश्य में दो युवितयाँ पेड़ों को सींच रही हैं, दूसरे में एक राजा हरिण का पीछा कर रहा है। जॉन माश्नन ने इस पदक को ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का माना है। ये दृश्य कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के प्रथम दृश्य से सादृश्य रखते है।

कृतित्व

कालिदास का नाम जिन रचनाओं से जोड़ा गया है, उनकी संचय तो 40 (चालीस) से भी ऊपर हो जाती है। यूरोप के प्रसिद्ध विद्वान, आफ्रेक्ट ने संस्कृत ग्रन्थों की बृहत् सूची में कालिदास के नाम से 30–35 ग्रन्थों का उल्लेख किया है। किन्तु सर्वसम्मति में समालोचक विद्वानों ने कालिदास के केवल सात ग्रन्थ माने हैं।

दो महाकाव्य – कुमारसंभव तथा रघुवंश।

दो खण्ड–काव्य (गीतिकाव्य) – ऋतुसंहार और मेघदूत।

तीन नाटक – मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञानशाकुन्तल।

रचना–क्रम – इन ग्रन्थों की रचना कवि ने किस क्रम से की, इसके विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख या बाह्य प्रमाण उललब्ध नहीं होता है। परन्तु तुलनात्क अध्ययन के आधार पर कुछ विद्वानों ने इन रचनाओं का निर्माण–क्रम इस प्रकार निर्धारित किया है। काव्यों में ऋतुसहार, कुमारसंभव, मेघदुत तथा रघुवंश और नाटकों में मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञानशाकुन्तल। इन काव्यों और नाटाके का सम्मिलित रूप से क्रम बताना हो तो इस प्रकार निश्चित किया जा सकता है – 1. ऋतुसंहार 2. मालविकाग्निमित्र 3. कुमारसम्भव 4. विक्रमोर्वशीय 6. मेघदूत 7. रघुवंश तथा 8. अभिज्ञानशाकुन्तल।

यह रचनाक्रम काव्यकाल के उत्तरोत्तर विकास के आधार पर निश्चित किया गया है।

इन सात ग्रन्थों के अतिरिक्त जो रचनाएँ कालिदास के नाम पर प्रचलित है वस्तुतः वे कालिदास की नहीं हैं, उसके दो कारण सम्भव है – या तो उन ग्रन्थों के रचयिता कालिदास के नाम से अन्य कवि हैं अथवा कुछ अप्रसिद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं को अमर बनाने हेतु कविकुल–गुरू कालिदास के नाम से जोड़ दिया होगा। कवि समालोचक राजशेखर ने अपनी 'सूक्ति –मुक्तावली' में कालिदास नाम के तीन कवियों का उल्लेख किया है –

"एकोपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
श्रृंगार ललितोद्गारे कालिदासत्रयी तु किमु।।"

प्रख्यात रघुकार कालिदास के अतिरिक्त शेष दो कालिदास कौन–से हैं, इस विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु स्वर्गीय महामहोपाध्याय

रामावतार शर्मा (पाण्डेय) ने बतलाया कि 'नवसाहसांक चरित' का कर्त्ता धारा के राजा भोज (1005–54 ई0) का आश्रित कवि पद्मगुप्त भी परिमल कालिदास कहलाता था। महाकवि कालिदास के समान सुमनोहर शैली होने के कारण इसे कालिदास या परिमल कालिदास की उपाधि दी गई थी। इसके अतिरिक्त सम्भवतः कालिदास के सदृश मनोरम श्रृंगारमयी रचना करने वाले किसी अन्य कवि का भी उपनाम कालिदास पड़ गया होगा। परन्तु राजा विक्रमादित्य के सभा–पण्डित महाकवि कालिदास, जिनके विषय में यहाँ विचार हो रहा है, इन दोनो से भिन्न तथा प्राचीन कवि है।

कश्मीरी पण्डित क्षमेन्द्र ने कालिदास की एक रचना 'कुन्तलेश्वरदौत्य' का भी उल्लेख किया है और उसका एक पद्य अपने ग्रन्थ में उद्धत किया है। परन्तु वह काव्य आजकल उपलब्ध नहीं होता। अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि काव्य इसी महाकवि की रचना है 1. रघुवंश 2. कुमार संभव 3. मेघदूत 4. ऋतु संहार

1. रघुवंश

इसमें मनु से लेकर सूर्यवंशी 31 राजाओं के जीवन का वर्णन है। इनमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम के जीवन का विशद एवं विस्तृत वर्णन है। सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :–सर्ग 1– राजा दिलीप की सन्तानहीनता और सन्तान–प्राप्त्यर्थ कुलगुरू वसिष्ठ के आदेशानुसार कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा का व्रत लेना, सर्ग 2–नन्दिनी की सेवा, राजा की परीक्षा, प्रसन्न नन्दिनी द्वारा सन्तान लाभ का वरदान, सर्ग 3–रघु का जन्म, विद्याध्ययन, इन्द्र से युद्ध में विजय–प्राप्ति तथा रघु का राज्याभिषेक, सर्ग 4–रघु के दिग्विजय का वर्णन, सर्ग 5–ब्रह्मचारी कौत्स द्वारा गुरूदक्षिणार्थ 14 करोड़ रुपए की याचना, तदर्थ रघु का कुबेर का आक्रमण, धन–वृष्टि, प्रसत्र कौत्स द्वारा रघु को पुत्र लाभ का आशीर्वाद, फलस्वरूप पुत्र अज का जन्म, इन्दुमती–स्वयंवर के लिए अज का प्रस्थान, सर्ग 6–इन्दुमती–स्वयंवर का वर्णन, सर्ग

7 – अज–इन्दुमती परिणय, प्रतिस्पर्धी राजाओं से युद्ध और अज की विजय, सर्ग 8 – अज का राज्याभिषेक, दशरथ–जन्म, इन्दुमती–वियोग और अज का विलाप, सर्ग 9–दशरथ का मृगया–वर्णन, श्रवणकुमार की हत्या और दशरथ को शाप–प्राप्ति सर्ग 10–पुत्रेष्टियज्ञ, राम आदि 4 पुत्रों का जन्म, सर्ग 11–सीता–स्वयंवर और राम आदि का विवाह, सर्ग 12–राम–बनवास, सीता–हरण, युद्ध, रावण–वध, सर्ग–3 राम का पुष्पक विमान से अयोध्या प्रत्यागमन तथा मार्गस्थ स्थलों का विशद वर्णन, सर्ग 14–राम–राज्यभिषेक, सीता–परित्याग, सर्ग 15–कुश–लव–जन्म, राम का स्वर्गारोहण, सर्ग 16–कुश का राज्यभिषेक कुश का कुमुद्वती से विवाह, सर्ग 17–कुश का स्वर्गवास, कुश–पुत्र अतिथि का राज्यभिषेक, सर्ग 18–अतिथि तथा उसके वंशज 12 राजाओं का संक्षिप्त वर्णन, सर्ग 19–अग्निवर्ण का, राज्यभिषेक, उसकी अत्यधिक विषयासक्ति, राजयक्ष्मा से पीड़ित होकर स्वर्गवास, उसकी रानी का राज्याभिषेक, गर्भस्थ बालक के उत्तराधिकारी होने का अमात्यों द्वारा निर्णय।

रघुवंशियों का वंश–वृक्ष – रघुवंश में 31 सूवर्यवंशी राजाओं का वर्णन है। उसका क्रम यह है :– 1. मनु >2. दिलीप >3. रघु >4. अज >5. दशरथ >6. राम >7. लव >8. कुश >9. अतिथि >10. निषध >11. नल >12.>नभ >13. पुण्डरीक >14. क्षेमधन्वा >15. देवानीक >16. अहीनम >17. पारियात्र >18. शिल >19. उत्राभ >20. वज्रणाभ >21. शंखण >22. व्युषिताश्व >23. विश्वासह >24. हरणयनाभ >25. कौसल्य >26. ब्रह्मिष्ठ >27. पुत्र >28. पुष्य >29. ध्रुवसंधि >30. सुदर्शन >31. अग्निवर्ण। तत्पश्चात् अग्निवर्ण की पत्नी तथा गर्भस्थ बालक को राज्याधिकार।

रघुवंश कालिदास की प्रतिभा का काव्य रूप में सर्वोत्तम निदर्शन हैं। कवि की प्रतिभा का प्रस्फुरण पद–पद पर परिलक्षित होता है। एक ओर भावों का सौन्दर्य है तो दूसरी ओर कलात्मकता का चमत्कार। एक ओर भाषा में प्रसाद और माधुर्य है तो

दूसरी और अलंकारों की अनुपम छटा। एक ओर वाच्यार्थ की मुख्यता है तो दूसरी और व्यंग्यार्थ का अपूर्व संयोजन। एक ओर संभोग श्रृंगार का सुखद रसास्वाद है तो दूसरी और विप्रलंभ श्रृंगार की मार्मिक अनुभूति। एक ओर बाह्य प्रकृति का विशद वर्ण है तो दूसरी और अन्तः प्रकृति का तात्त्विक विश्लेषण। एक ओर अज–इन्दुमती के प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण है जो दूसरी और सीता–परित्याग का मार्मिक दृश्य। एक ओर दिलीप आदि का तपोयम जीवन है तो दूसरी ओर अग्निवर्ण की घोर विषयासक्ति। एक और राजा का आदर्श और उनकी प्रजावत्सलता है तो दूसरी और प्रजा की राजभक्ति। एक और राजतन्त्र का महत्त्व है तो दूसरी और प्रजा में विचार–स्वातन्त्र्य। इस प्रकार रघुवंश विविध विरोधी गुणों का समन्वय है। कहीं दार्शनिक पाण्डित्य प्रदर्शन है तो कहीं काव्य–शास्त्रीय वैदुष्य, कहीं उपमा का मनोहर प्रयोग है तो कहीं अर्थान्तरन्यास की छटा, कहीं श्रमसाध्य यमक है तो कहीं सहज उत्प्रेक्षाएँ, कही वर्णन वैविध्य है तो कहीं कल्पना की ऊँची उड़ान। इस प्रकार कालिदास सभी दृष्टि से कवियों के लिए आदर्श हो गए।

2. कुमारसंभव

इस महाकाव्य में हिमालय की पुत्री पार्वती द्वारा घोर समस्या के फलस्वरूप वर रूप में शिव को प्राप्त करने तथा उनके कार्तिकेय (स्कन्द, कुमार) की उत्पत्ति का वर्णन है। सर्गानुसार कथा संक्षेप में इस प्रकार है : सर्ग 1 – हिमालय वर्णन तथा पार्वती की उत्पत्ति, सर्ग 2 –तारकासुर से पीड़ित देवों का ब्रह्मा के पास जाना और शिव–पार्वती के पुत्र स्कन्द द्वारा तारकासुर के वध का उपाय ब्रह्मा के द्वारा बताया जाना, सर्ग 3–कामदेव द्वारा शिव की तपस्या का भंग किया जाना और क्रुद्ध शिव द्वारा कामदेव को भस्मसात् करना, सर्ग 4 – पति के नाश पर रति का विलाप, सर्ग 5 – पार्वती की घोर तपस्या का वर्णन और ब्रह्मचारी वेशधारी शिव से पार्वती का संलाप और समागम,

सर्ग 6–विवाहेच्छुक शिव का पार्वती के याचनार्थ सप्तर्षियों को हिमायल के पास भेजना, सर्ग 7–शिव की वरयात्रा और पार्वती–परिणय, सर्ग 8 – शिव–पार्वती का दाम्पत्य जीवन केलि–विहार –वर्णन (कुछ विद्वान् केवल 8 सर्ग ही कालिदास की रचना मानते हैं) सर्ग 9 – दाम्पत्य सुखानुभव करते हुए विविध पर्वतों आदि पर घूमकर कैलास पर्वत पर वापस आना, सर्ग 10–कार्तिकेय (कुमार, स्कन्द) का गर्भ में आना, सर्ग 11–कुमार जन्म तथा कुमार का बाल्य–वर्णन, सर्ग 12 – कुमार का सेनापतित्व, सर्ग 13–कुमार द्वारा सैन्य–संचालन, सर्ग 14–देव–सेना का आक्रमणार्थ प्रयाण, सर्ग 15 – देवासुर–सैन्य–संघर्ष, सर्ग 16–युद्ध वर्णन सर्ग 17 – तारकासुर–वध।

कुमारसंभव कालिदास की प्रतिभा का सुन्दर निदर्शन है। इसमें भाव–पक्ष और कला–पक्ष का सुमधुर समन्वय है। अलंकारों की सुन्दर छटा, वर्णनों में सजीवता व्यापकता और स्वाभाविकता, भाषा का परिष्कार, कल्पना की उदात्तता, भावों की मनोज्ञता, रसों का सुन्दर परिपाक, रसराज श्रृंगार का सर्वांगीण वर्णन, तपोमूलक परिष्कृत प्रेम का महत्त्व–प्रतिपादन तथा छन्द योजना में सिद्धहस्तता कुमारसंभव की प्रमुख विशेषताएं हैं। इस दृष्टि से कुमारसंभव एक सफल महाकाव्य है।

मेघदूत

मेघदूत महाकवि कालिदास द्वारा रचित एक सुमधुर संस्कृत–गीतिकाव्य है। गीतिकाव्य काव्य का वह रूप है, जो वाद्यों के साथ संगीतात्मक रूप में गाया जा सकता है। गीतिकाव्य प्रेम, शोक या भक्ति के भावों, विचारों या अनुभवों का प्रकाशन है। यह मानवहृदय का स्वाभाविक प्रवाह है । वह हृद्गत भावों का स्वतः प्रकाशन है। यह सामान्य कविता की अपेक्षा अधिक भावनाओं को प्रभावित करता है। भारतीय गीतिकाव्य में जीवों और वृक्षों का प्रमुख स्थान रहा है। गीतिकाव्य के लेखकों ने तुलना के लिए चकोर, चक्रवाक, चातक, कमल, लता तथा अन्य वृक्षों को लिया है। गीतिकाव्य को

खण्डकाव्य कहा जाता है, क्योंकि यह पद्य रूप में होता है, परन्तु काव्य के पूरे लक्षण इसमें नहीं होते हैं। भारतीयों गीतिकाव्यों ने पाश्चात्त्य लेखकों को भी प्रभावित किया है।

गीतिकाव्यों, विशेषकर दूतकाव्यों में कालिदास का मेघदूत सर्वश्रेष्ठ है। इसको मेघसन्देश भी कहते हैं। इसमें दो प्रकरण है – पूर्वमेघ और उत्तरमेघ पूर्वमेघ में 67 तथा उत्तरमेघ में 54 श्लोक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इस काव्य में कुल मिलाकर 121 श्लोक हो जाते है। इसकी कई प्रतियों में कुछ कम या अधिक भी श्लोक मिलते हैं।

ऋतुसंहार

यह कालिदास की अप्रौढ अवस्था की कृति है। इसमें 6 सर्ग और 144 श्लोक हैं। इन 6 सर्गो में 6 ऋतुओं का क्रमशः वर्णन है। इनका क्रम है – ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और बसन्त। संस्कृत–साहित्य में केवल यही ग्रन्थ है, जिसमें 6 ऋतुओं का पूरे विवरण के साथ वर्णन है। एक के बाद दूसरी ऋतु आती है, प्रकृति में नवीनता आती है, जीवन में उल्लास उल्लसित होता है, प्रेमी–प्रेमिका उत्फुल्लित होते हैं ओर वे प्रत्येक ऋतु का उपभोग करते हैं।

कतिपय विद्वान् ऋतुसंहार को कालिदास की कृति नहीं मानते। उनके तर्क है : (1) अन्य काव्यों के तुल्य भाषा में परिष्कार का अभाव। (2) मल्लिनाथ का टीका न करना। (3) अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों में ऋतुसंहार से उद्धरणों का अभाव (4) प्रेम–विषयक कालिदास के आदर्श की न्यूनता। परन्तु ये तर्क युक्तिसंगत नहीं है। इसका कारण है :– (1) कालिदास की यह अप्रौढ़वस्था की कृति है, अतः भाषा आदि में पूर्ण परिष्कार का अभाव स्वाभाविक है। (2) ग्रन्थ अत्यन्त सरल है (3) कालिदास के अन्य ग्रन्थों की तुलना में इसमें उच्च कोटि के पद्य न्यून हैं, अतः काव्यशास्त्रीय आचार्यो ने इसमें से उद्धरण नहीं दिए हैं। (4) यह यौवन श्याम अवस्था की कृति है।

नाटक

1. **मालविकाग्निमित्र** – कालिदास का यह सर्वप्रथम नाटक है। इसमें 5 अंक है। इसके पात्र ऐतिहासिक हैं। इसमें विदिशा के राजा अग्निमित्र तथा मालवा के राजकुमार की बहिन मालविका की प्रेम–कथा का वर्णन है। इन दो प्रधान पात्रों के नाम के आधार पर इसका नाम 'मालविकाग्निमित्र' पड़ा है। शत्रु द्वारा अपने भाई के बन्दी बना लिए जाने के कारण मालविका को अग्निमित्र की राजमहिषी की परिचारिका बनना पड़ता है। एक कलाकार द्वारा चित्रित मालविका का चित्र देखकर राजा उस पर आसक्त हो जाता है और अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए अनेक उपाय करता है। पहली दो रानियाँ इसमें बाधा डालती हैं। अन्त में जब यह ज्ञात होता है कि मालविका भी वस्तुतः एक राजकन्या है तब उसका विवाह राजा अग्निमित्र से हो जाता है। इसका प्रधान पात्र शुगवंशीय पुण्यमित्र (183 ईसा पूर्व) का पुत्र अग्निमित्र है। कुछ राजनैतिक घटनाओं का भी उसमे उल्लेख मिलता है। इस नाटक के आधार पर कुछ विद्वान् यह कल्पना करते हैं कि कालिदास अग्निमित्र का समाकालीन या उसकी सभा से आश्रित कवि था, अथवा वह अग्निमित्र के कुछ समय बाद ही हुआ था, जनता को अग्निमित्र के जीवन की घटनाएँ पूर्णतया स्मरण थीं। इस नाटक में कथा वस्तु जटिल होते हुए भी पाठक की जिज्ञासा को बनाए रखती है। प्रणय–कथा में विदूषक का पर्याप्त हाथ है। नाटकीय तत्त्व शेष दो नाटकों से हीन हैं।

2. **विक्रमोर्वशीय** – नाटक रचनाक्रम की दृष्टि से विक्रमोर्वशीय कालिदास की द्वितीय कृति है। यह एक उपरूपक है। इसमें राजा पुरूरवा तथा उर्वशी नामक अप्सरा की प्रणय–कथा वर्णित है पुरूरव केशी नामक दैत्य से उर्वशी का उद्धार करते है और उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। इस प्रकार दोनो की प्रेम–कथा

का विकास होता है। मध्य में दोनो का वियोग होता है और अन्त में मिलन हो जाता है। इस प्रकार नाटक में शृंगार के दोनों पक्ष सम्भोग और विप्रलम्भ (संयोग, विरह) का अच्छा परिपाक हुआ है। पात्रों की संख्या कम है पर उनका चित्रण मर्मस्पर्शी है। इसकी भाषा शाकुन्तला की भाँति मँजी और मुहावरेदार न होते हुए भी प्रसाद गुण सम्पन्न तथा माधुर्य है। प्राकृति दृश्यों का स्थान–स्थान पर उत्तम चित्रण हुआ है। सम्भवतः अपनी इस रचना का नाम 'विक्रमोर्वशीय' करके महाकवि कालिदास ने अपने आश्रयदाता उज्जयिनी के सम्राट् विक्रमादित्य को अमर बनाने का सफल प्रयास किया है।

विक्रमोर्वशीय में कवि की प्रतिभा मालविकाग्निमित्र की अपेक्षा अधिक जागृत और मुखरित हुई है। कला की दृष्टि से इसका स्थान मालविकाग्निमित्र तथा शकुन्तल के बीच का है। इसमें कवित्व अधिक है और नाटकीय कौशल कम।

3. **अभिज्ञानशाकुन्तल** – यह कालिदास का सम्भवतः अन्तिम तथा संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसमें सात अंक है। इसमें राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला का प्रणय–कथा वर्णित है। जो महाभारत की कथा के आधार पर विकसित है। परन्तु कवि ने इसमें कुछ परिवर्तन करके कथानक में सौंदर्य ला दिया है। हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त शिकार खेलते हुए कण्व ऋषि के प्रवास के कारण ऋषि की पलित धर्म पुत्री शकुन्तला उसका स्वागत करती है। दोनों का परस्पर प्रेम हो जाता है और गांर्धव विवाह हो जाता है। कुछ दिन के अनन्तर, राजा 5–6 दिन बाद वापस आने का आश्वासन एवं अपनी अँगूठी शकुन्तला को देकर राजधानी वापस चला जाता है। राजा के प्रेम में मग्न शकुन्तला आश्रम में आए दुर्वासा का स्वागत नहीं करती है। जिससे क्रुद्ध होकर के उसे शाप देते है कि तुम्हारा प्रेमी तुम्हें भूल जाएगा और पहचान (अभिज्ञान रूप अँगूठी) दिखाने पर

उसे याद करेगा। तीर्थ–यात्रा से लौटने पर सब समाचार जानकर कण्व ऋषि शकुन्तला को पति दुष्यत के गृह भेजने की तैयारी करते हैं। मार्ग में जाते समय शकुन्तला की अँगूठी एक तालाब में गिर जाती है और अँगूठी न रहने के कारण राजा शकुन्तला को पहचान नहीं पाता तथा अपनाने से इन्कार कर देता है। तब निराश होकर विलाप करती हुई शकुन्तला को एक दिव्य ज्योति (उसकी माता मेनका) स्वर्ग में ले जाती है। वहाँ हेमकूट पर्वत पर वह अपनी माता मेनका के साथ निवास करती है। इधर शकुन्तला की खोई हुई राजा के नाम से अंकित अँगूठी एक मछुआरे की मछली के पेट से मिलती है। जब वह अँगूठी राजकर्मचारियों द्वारा राजा के सामने लाई गई तो राजा शकुन्तला की याद में तड़पने लगता है। अन्त में इन्द्र की युद्ध में सहायता करके जब दुष्यन्त स्वर्ग से लौटते समय मारीच के आश्रम से उतरते हैं तो अपनी पत्नी शकुन्तला और पुत्र से साक्षात्कार होता है। ऋृषि की आज्ञा से दोनों राजधानी में लौटकार सुखपूर्वक बाकी जीवन व्यतीत करते हैं।

इस नाटक से दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाने तथा बाद में स्मरण करने का कारण पहचान (अभिज्ञान) के लिए दी हुई अँगूठी है। अतः इस नाटक का नाम 'अभिज्ञानशाकुन्तल' रखा गया है। इस नाटक के प्रारम्भ में संयोग शृंगार रस प्रतिपादित है। भारतीय तथा विदेशी इस नाटक की प्रशंसा करते नहीं अघाते है।